आयुर्वेद में वर्णित पित्त तत्त्व का विवेचन तथा रोग निवारण

एम्.कृष्णा राव, (सहायक आचार्य)
श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110021
शोधछात्र,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जे.न.यू
नई दिल्ली- 110067
ई-मेल- mkrishnarao@svc.ac.in
M.N- 7207237531

आर्य-धर्म और आर्य दर्शन का प्राण के रूप में ऋषि-मुनियो ने वेदों को माना है। मानवजीवन का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व अध्यात्मिक स्वास्थ्य के अलावा सभी प्रकार के जीवन मूल्यों सुष्टु वर्णन होने के कारण वेदों को विश्वकोश के रूप में वर्णन करते है। आयुर्वेद का मुख्य सिद्धान्तों का पृष्टभूमि मुख्यतः अथर्ववेद को मानते है, इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख चरक एवं सुश्रुत संहिता में देख सकते है।[1] चरक संहिता में इसे शाश्वत, पुण्यतम, अभ्युदय तथा निःश्रेयस् वेदाङ्ग के रूप मे स्वीकार किया है।[2] जिस शास्त्र में आयु संबन्धित ज्ञान तथा दीर्घायु के उपायों के बारे में बतलाया गया हो उसे आयुर्वेद कहते है- **आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः**।[3] आचार्य चरक ने शरीर(पञ्चमहाभूत एवं चेतनाधिष्टित), इन्द्रिय(कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय), सत्त्व(मन) एवं आत्मा का संयोग को आयु कहा है तथा आयुर्वेद के विषय में "हितायु, अहित आयु, सुखायु और दुखायु आदि चतुर्विधायु का वर्णन हो तथा उस आयु के लिये जो हितकर एवं अहितकर है; इसका वर्णन किया गया

---

[1] १. इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेद्स्यानुत्पाद्यैव। (सु.सू.1.6)
२. तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णां.........भक्तिरुद्दिश्या, (च.सू.30.21)

[2] सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च, *च०सं०सू०* 30.27

[3] सु.सं.सू.1.15

हो तथा मान और उसके लक्षणों वर्णन जिसमें प्राप्त होता है, उसे आयुर्वेद कहते ह।"[4] इस प्रकार परिभाषित किया है। धारि, जीवित, नित्यग, अनुबन्ध एवं चेतनावृत्ति आदि इसके पर्याय के रूप में पर्याय के रुप में प्रयुक्त हुए है।[5] अचार्य डल्हण ने आयुर्वेद की शब्द को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है।

- **आयुः शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगः, तदस्मिन्नायुर्वेदे विद्यते अस्तीत्यायुर्वेदः।**
- **आयुविद्यते ज्ञायते अनेनेत्यायुर्वेदः।**
- **आयुविद्यते विचार्यते अनेन वेत्यायुर्वेदः।**
- **आयु अनेन विन्दति प्राप्नोतीति वाऽऽयुवेदः॥**[6]

इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनं व्याख्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वास्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्।[7] अर्थात् यहाँ आयुर्वेद का प्रयोजन व्याधि से पीड़ित मनुष्यों को व्याधियों से मुक्त करना तथा स्वस्थ्य मनुष्य की स्वस्थ की रक्षा करना है।

स्वस्थ्य व्यक्ति की परिभाषा सुश्रुत जी करते है-

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥[8] अर्थात् जिस व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप सम्यक् आहार विहार करने से मनुष्य शरीर में स्थित वात-पित्त-कफ ये तीनों दोष सम(प्रकृत) अवस्था में रहते है, जठराग्नि भी सम रहती है (मन्द-तीक्ष्ण आदि न्यूनाधिक्य को प्राप्त नहीं होती), धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल(स्वेद-मूत्र-पुरीष) की क्रिया सम (अविकृत) रहती है,आत्मा-इन्द्रिय-मन सदैव प्रसन्न रहते है। इस प्रकार शरीर में किसी भी प्रकार का विषमता नहीं होना ही स्वस्थ्य कहलाता है।

---

[4] हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्। मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते, च०सं०सू० 1.41

[5] च.सं.सू.30.22

[6] तत्रैव. श्री डल्हनाचार्यविरचित निबन्धसंग्रह व्याख्या

[7] सु.सं.सू.1.12

[8] सु.सं.सू.15.42

यहां विषय ध्यातव्य है कि स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्धन हेतु त्रिविध दोषों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हैं क्योंकि यह शरीर रुपी गृह भी वातपित्तश्लेष्मा रुपी तीनों स्थूणों या स्कन्धों पर आधारित रहता है। **'वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः। तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं- धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः अतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके त एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः।'**[9]

त्रिविध दोषों का अन्योंन्याश्रय संबंध-

"**वाति इति वातः**" "**वा गति गन्धनयोः।**[10]**"** इस **'वा'** धातु से **क्त** प्रत्यय लगाने से **'वात'** शब्द बनता है। पित्त शब्द **'पित्त सन्तापे'** सन्ताप अर्थक **'तप' (भ्वादिगण)** धातु में अच् प्रत्यय तकार का इत्व एवं वर्ण्यविपर्यय होकर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ देहस्थ पित्त धातु होता है। कफ धातु को आयुर्वेद के आचार्य श्लेष्मा नाम से भी अभिहित करते है श्लेष्मा शब्द की उत्पत्ति श्लिष आलिङ्गने (दिवादिगण) धातु से आलिङ्गन के अर्थ में मनिन् प्रत्यय लगाने **श्लिष्यन्तीति श्लेष्मा** इस अर्थ मे निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है **शरीर का लिपटनेवाला** कफ धातु है। कफ शब्द की निरुक्ति के विषय में कहते है जो जलीय तत्त्वों से उत्पन्न होने वाला धातु है उसे कफ कहते है **केन जलेन फलतीति कफः|**[11] **इस** प्रकार वात, पित्त एवं श्लेष्मा शब्द बनते है।

वात शरीर में क्रिया उत्पादक है, पित्त ताप जनक और श्लेष्मा सुक्ष्म एवं स्थूल अवयवों को संयुक्त करने वाला मूल द्रव्य है। इन तीनों के साम्यावस्था को प्रकृति- '**प्रकृतिभूतानां तु खलु वातादिनां फलम् आरोग्यम्।'**[12] तथा विषमावस्था को विकृति कहते है। प्राकृतिक अवस्था में प्राणी स्वस्थ रहता है और विकृति अवस्था में अस्वस्थ रहता है। वात-पित्त-श्लेष्म से युक्त शरीर का इस ब्रह्माण्ड- '**पुरूषोऽयं लोकसम्मितः।'**[13] के

---

[9] सु.सं.सू.21.1

[10] सु.सं.,सू. 21/5

[11] वहीं. पृ.स.182

[12] च.सं.शा.6.8

[13] वहीं.शा.5.3

साथ अद्भुत सादृष्य देखने को मिलता है। हमारे देह रूपी जगत में वात-पित्त-कफ़ को क्रमशः वायु-सूर्य-चन्द्र जैसी क्रियाएँ होती रहती है। वात-वायु के समान संपूर्ण शरीर में धारक पोषक अंशों का विक्षेपण करता है। पित्त सूर्य के समान द्रवीय अंश का शोषण एवं पाक कर्म करता है। कफ़ या श्लेष्मा- चन्द्र के समान शरीर में रसाधान करता है। इस प्रकार ये तीनों जीवन काल में शरीर रूपी जगत् का पालन करते हुए इसका संचालन करते रहते हैं तथा वायु-सूर्य-चन्द्र समय समय पर उग्र होकर जगत के लिए कष्टदायक जो जाते है-

'अध्यात्मलोके वातादृयैर्लोको वातरेवोन्दुभिः।

षोड्यते धार्यते चैव विकृताविकृतैस्तथा।'[14] अर्थात् ठीक उसी प्रकार वात-पित्त-कफ़ शरीर के अन्दर विषमावस्था में होने पर शरीर को रोगग्रस्त कर देते है। इन तीनों को शरीर को पोषण एवं स्थित रखने के कारण इसे शरीर रूपी भवन का अधारस्तम्भ मानना चहिए। शरीर के अन्दर इन तीनों के तीन स्थान या केन्द्र है। ये केन्द्र में निश्चित प्रमान में रहते हुए शरीर को समान भाव से संचलित करते हुए निरोग रखते है। अतः देहरूपी भवन के लिए तीन महास्तम्भ है अतः इन्हें त्रिस्थूण या त्रिस्तम्भ कहते है। देह धारण कर्म के कारण इन्हें धातु भी कहते है। ये तीनों शरीरगत रस-रक्त-स्नायु-अवयव-स्वेद-मूत्र-पुरीष आदि धातु-उपधातु को मलिन बना देने कारण इन्हें मल की संज्ञा दी गयी है तथा ये तीनों हमारे दैनिक आहार के परिपाक के समय उत्पन्न होने से मलों के रूप बनते रहते है। वात्त धातु को रजोबहुल, पित्त धातु को सत्त्वबहुल एवं कफ धातु को तमोबहुल आचार्यों ने कहा है। जब वात पित्त कफ ये तीनों धातु प्रकृत या साम्यावस्था में रहते हैं तो देह को धारण करने से धातु कहलाते हैं और इनके अन्दर जब विकृति आ जाती हैं या विषमावस्था होती है तो देह को दूषित करने से इसका नाम दोष[15] संज्ञा है । दोष शब्द का अर्थ है प्रकृति को उत्पन्न करने के साथ-साथ, जिनमें स्वतन्त्र रूप से दूष्यों को

---

[14] च.सं.शा.26.291

[15] धारणात् धातवः, दूषणात्ः, मलनी करणान्मलाः।
वायु : पित्तं कफो दोषा धातवश्च मला मताः।
तत्रापि पञ्चधा ख्याता: प्रत्येक देह धारणात् ।
शरीर दूषणादोषा धातवो देह धारणात्।
वात पित्त कफा ज्ञेया मलिनी करणान्मलाः।। शा.पू. अ.5

अर्थात् रसरक्तादि धातुओं को दूषित करने की क्षमता हो, उन्हें दोष कहते हैं।[16] **दूषयन्तीति दोषः'** अर्थात् जो दूषित करे वे दोष हैं अर्थात् जो अन्य धातुओं को दूषित करे उन्हें दोष कहते हैं। यह दोष दो प्रकार के माने जाते है– शारीरिक दोष जो वात-पित्त एवं कफ दोष हैं एवं द्वितीय मानसिक दोष जो कि रजस् एवं तमस् दोष हैं।[17] शारीरिक दोष वो होते है जो शरीर को दूषित करते हैं जिसके कारण शारीरिक विकारों ज्वरातिसार, शोक, शोष, प्रमेह, श्वास एवं कुष्ठ आदि रोगों को उत्पन्न करता है शारीरिक दोष उत्पन्न होने क मुख्य कारण है आहार-विहार वैषम्य ऋतु परिवर्तन। ***सुश्रुतसंहिता*** में त्रिविध दोषों का वर्णन करते है जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं वायु विसर्ग, आदान एवं विक्षेप क्रिया द्वारा संसार को धारण करते हैं, उसी प्रकार सूर्य का प्रतिनिधि पित्त आदान कार्य द्वारा, चन्द्र का प्रतिनिधि कफ विसर्ग कार्य द्वारा एवं वायु का प्रतिनिधि विक्षेप कार्य द्वारा शरीर को धारण करते हैं।[18] चरक संहिता में **"सर्व एव निज विकारा नान्यत्र वातपित्तकफेभ्यो निर्वर्तन्ते, यथा हि शकुनिः सर्वं दिवसमपि परिपतन् स्वां छायां नातिवर्त्तते, तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्तः सर्वे विकारा वातपित्तकफान्नातिवर्त्तन्ते"॥**[19] जिस प्रकार पक्षी दिन भर परिभ्रमण करने पर भी अपनी छाया से अलग नहीं हो सकता, उसी प्रकार कफ, पित्त एवं वात दोष की विषमता से उत्पन्न सभी शारीर दोषजन्य रोग वात-पित्त-कफ का अतिक्रमण नहीं करते और रोगों का नामकरण उनके लक्षण एवं प्रकृति विशेष को देखकर किया जाता है जिस प्रकार धर्म, अर्थ एवं काम परस्पर विरुद्ध होते हुए एक-दूसरे के सहायक बनकर मोक्ष का साधन बनते हैं, वैसे ही त्रिविध दोष साम्यावस्था में रहकर शरीर को बल, वर्ण, ओज समृद्धि एवं दीर्घायु प्रदान करते हैं। इन दोषों के वैषम्यावस्था में होने पर ये शरीर में विभिन्न विकार उत्पन्न करते हैं।[20] दोषों के विकार ही व्याधि कहलाती है **दोषाणां विकारजनकत्वं**

---

[16]प्रकृत्यारम्भकत्वे सति स्वातन्त्र्येण दुष्टिकर्त्तत्वं दोषत्वम्॥ मा.नि., 1/14 पर मधुकोषटीका, पृ.- 22

[17] वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः। मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च।। च.सं.,सू. 1/57

[18] विसर्गादानविक्षपैः सोमसूर्यानिला यथा। धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तनिलास्तथा॥ सु.सं.,सू. 21/8

[19]च.सं.,सू. 19/5

[20]च.सं.,सू. 12/13

व्याधिजनकत्वञ्च।॥ मानसिक दोष वो होते है जो मन एवं इन्द्रियों को दूषित करते है यह दो प्रकार कि होती है रज एवं तम- **रजस्तमश्च मानसौ दोषौ।**[21]

"नियतस्त्वनु बन्धो रजस्तमसोः परस्परं न हि अरजस्कं तमः प्रवर्त्तते।[22]"

यह द्वेष इच्छा आदि भावनाओं से उत्पन्न होती है सत्त्व गुण शुद्धता या स्वच्छता का प्रतीक है यह प्रकाशक और लघु है, रजोगुण अशुद्धि का प्रतीक है यह सक्रिय चञ्चल तथा उपष्टम्भक या संश्लेषजनक होता है यह दुख उत्पन्न करता है दुख के अन्तर्गत मान, मद, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, शोक चिन्ता आदि भाव परिगणित होते है या विकार उत्पन्न होते है। तमोगुण अन्धकार या अज्ञान का प्रतीक है इन दोनों से ही (रजोगुण एवं तमोगुण) ही मानसिक विकार उत्पन्न होते है। अतः हम कह सकते है त्रिदोष पर ही आयुर्वेद प्रतिष्ठान है।

ऋतूओं अनुसार प्रकृत स्थिति का सारणि-

ऋतुएँ	**भारतीय मास**	**आंग्लमासः**	**सुर्यबल**	**चन्द्रबल**	**भूमण्डल का स्वभाव**	**द्रव्यों में रस का वृद्धिः**	**प्राणियों का बल**	**संचय**	**प्रकोप**	**शमन**
शिशिर	माघ-फाल्गुन	जनवरी-फरवरी फरवरी-मार्च	पूर्ण	क्षिण	रुक्ष	तिक्त	श्रेष्टबल	कफ	---	---
वसन्त	२.चैत्र-वैशाख,	मार्च-अप्रैल, अप्रैल-मई	पूर्णतर	क्षिणतर	रुक्षतर	कषाय	मध्यबल	---	कफ	---
ग्रीष्म	ज्येष्ठ-आषाढ	मई-जून जून-जुलई	पूर्णतम	क्षिणतम	रुक्षतम	कटु	अल्पबल	वात	---	कफ
वर्षा	श्रावण-भाद्रपद	जुलाई-अगस्त अगस्त-सितम्बर	क्षिण	पूर्ण	स्निग्ध	अम्ल	अल्पबल	पित्त	वात	---

[21]च.सं.,वि. 6/5

[22] च.सं.,वि. 6/9

शरद	अश्विन-कार्तिक	सितम्बर-अक्टुबर अक्टुबर-नवम्बर	क्षिणतर	पूर्णतर	स्निग्धतर	लवण	मध्यबल	---	पित्त	वात
हेमन्त	अगहन-पौष	नवम्बर-दिसम्बर दिसम्बर-जनवरी	क्षीणतम	पूर्णतम	स्निग्धतम	मधुर	श्रेष्ठबल	---	---	पित्त

इन त्रिदोषों में (वात-पित्तकफ़) में पित्त दोष ताप जनक, सूर्य के समान द्रवीय अंश का शोषण एवं पाक कर्म करने के कारण तथा शरीर में आदान कर्य करने के कारण इस विशिष्ट पित्त दोष का विवेचन तथा रोगोपशमन में उसकी भूमिका पर आगे चर्चा करेंगें-

पित्त दोष का विवेचन-

पित्त शब्द की उत्पत्ति-

पित्त शब्द **'पित्त सन्तापे'** सन्ताप अर्थक **'तप' (भ्वादिगण)** धातु में अच् प्रत्यय तकार का इत्व एवं वर्ण्यविपर्यय होकर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ देहस्थ पित्त धातु होता है

- **तापयति दहति भुक्तमाहारजातम्।**
- **तप्यते अष्टविधमणिमादिक मैश्वर्यं लभयतिअभिप्रेतार्थं साधयति इति पित्तं।**
- **तपति उष्माणमुत्पादयति।**

इस प्रकार तीन व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ प्राप्त होता है। पित्त तीक्ष, द्रव, पूति, नील, पीत, उष्म, कटुरस, विदग्ध और अम्ल आदि इसके लक्षण होते है

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च।
उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं च अम्लमेव च॥[23]

पित्त दोष को आयुर्वेद में अग्नि, उष्म आदि नामों अभिहित करते है। इसे शरीर में शक्ति का संचार करने के करण बाह्यप्रकृति के सूर्य के समान बताया है।

पित्त के गुण-

---

[23] सु.सं.सू.21.11

उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, सर, विस्र, अमन, कटु, पीत तथा नीलवर्ण आदि पित्त के गुण होते है (भौतिक-गुण) हैं। शब्द, स्पर्ण तथा रूपप्रधान इसके नैसगिक गुण हैं। चरक संहिता मे पित्त के विषय में कहते है कि यह अल्पस्नेह युक्त, उष्ण, द्रव अम्ल, कटु आदि गुण के रूप में वर्णन करते है- **सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।**

विपरीतगुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति॥[24]

यह त्रिगुणात्मक होने पर भी सत्त्व गुण बहुल होता है । तात्पर्य यह कि शरीरस्थ सभी उपर्युक्त गुण पित्त के कारण ही होते हैं ।

पित्त के स्थान-

पित्त का स्थान हृदय से नाभि के मध्य माना जाता है अग्निवत् संज्ञा के कारण इसकी उपस्थिति संपूर्ण शरीर में मानी जाती है किन्तु चरक संहिता में पित्त स्वेद (पसीना) रस, लसीका, रक्त तथा आमाशय में स्वीकारते हैं इनमें भी वे आमाशय को पित्त का विशिष्ट स्थान के रूप में स्वीकार करते हैं- **...तत्रापि पक्काशयो विशेषेण वातस्थानं; स्वेदो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि, तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्...**[25] *सुश्रुत संहिता* मे भी विशिष्टस्थान के रूप में पक्काशय एवं अमाशय के मध्य पित्त को मानते है, **...तदुपर्यधो नाभेः पक्काशयः। पक्कामाशयमध्यं पित्तस्य...**[26]। गौण स्थान के रूप में यकृत्, प्लीहा, हृदय, दृष्टि और त्वक् इन पाँच को मानते है। **...पित्तस्य यकृत्प्लीहानौ हृदयं दृष्टिस्त्वक् पूर्वोक्तं च...**[27]।

पित्त दोष के कार्य-

पित्त अग्नि महाभूत से उत्पन्न होने के करण आग्नेयांश प्रधान पित्त कहलाता हैं अतः इसमें तैजस भावों की अधिकता रहती है। चरक संहिता के अनुसार दृष्टि से देखना, भोजन का पचना, शरीर में उष्णता का नियमित रहना, भूख लगना, प्यास लगना, शरीर में कोमलता बना रहना, कान्ति रहना, मन की प्रसन्नता और धारणशक्ति का व्यवस्थित रहना आदि पित्त के कार्य है-

---

[24] च.सं.सू.6.

[25] च.सं.सू.2.8

[26] सु.सं.सू.21.6

[27] वही.7

दर्शनं पक्तिरुष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्। प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम्॥[28] अष्टांग हृदय में दाह, लालिमा, उष्णता का अनुभव, पकना या पकाना, स्वेद (पसीना) स्राव, कोथ (दुर्गन्धित सडन), सदन (अवसाद), मूर्छा, मद, मुख में कटु तथा अम्ल रस का अनुभव होना तथा पित्त दोष से युक्त स्थान का वर्ण पाण्डु तथा अरुण से रहित अतएव अन्य वर्णों वाला माना है **...पित्तस्य दाह-रागोष्म-पाकि-ताः। स्वेदः क्लेदः स्रुतिः कोथः सदनं मूर्छनं मदः। कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पाण्डुरारुण-वर्जितः॥**[29] पित्त दोष के समस्थिति में रहने पर यह जठराग्नि का कार्य संपन्न करता है- **पित्तादेवोष्मणः पक्तिर्नराणामुपजायते**[30] पित्त के अग्नि तत्व से संबन्ध होने के कारण पित्त के सम होने से वह शुभ एवं सुख का कारण बनता है एवं इसके प्रकुपित होने से यह पाचन शक्ति को अनियन्त्रित कर देता है जिससे व्यक्ति को उदर संबन्धित नाना रोगों प्राप्त होकर विकार ग्रस्त हो कर दुख को प्राप्त करता है तथा उसे आँखों मे कम दिखाई देने लगता है शरीर का भी परिवर्तन हो जाता है। सुश्रुत संहिता में इन्हीं प्राकार के कर्यों चर्चा की है[31]।

पित्त के प्रकार-

वात दोष के समान इस दोष का भी पाँच भेद आयुर्वेद के आचार्य स्विकारते हैं पाँच भेद मानने वालों में ***सुश्रुत*** एवं ***वाग्भट्ट*** जी हैं। 1.रागकृत् (रञ्जक), 2.पक्तिकृत् (पाचक), 3.तेजःकृत (साधक), 4.ओजःकृत (आलोचक) 5.मेधाकृत् (भ्राजक)

रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत्पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्निकर्मणानुग्रहं करोति[32] इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

पाचकाग्नि-

---

[28] च.सं.सू.18.51

[29] अ.हृ.सू.12.51-52

[30] च.सं.सू.17.116

[31] सु.सं.शा.7.1

[32] वहीं. 15.05

सुश्रुत संहिता इस विषय में कहते है यह पक्वाशय और आमाशय के मध्य स्थित हो कर चार प्रकार के (चव्य, चोष्य, लीढ़ एवं पीत) अन्न को पचाता हैं तथा उसे दोष, रस, मूत्र तथा पुरीष के रूप में पृथक करता हैं। वहीं स्थित यह पित्त अपनी शक्ति से अन्य पित्त स्थानों का शरीर का अग्निकर्म द्वारा उपकार करता है इसलिए इसकी पाचकाग्नि की संज्ञा से अभिहित करते है।[33] पाचक पित्त के क्रिया करने के पश्चात् ही अन्य पित्त क्रिया करते है अतः इस पित्त सर्वश्रेष्ट एवं सर्वोपकारक होता है। यह मुखगत, आमाशयस्थ एवं यकृत आदि स्थानों पर पाचक पित्त की ग्रन्थियाँ है जिसके कारण ही भिन्न अंशों का पाचन होता है।

रागकृत- इसके विषय में कहते है कि जो पित्त यकृत और प्लीहा में स्थित है उसकी रंजकाग्नि से अभिहित करते है- **यत्तु यकृत्प्लीह्नोः पित्तं तस्मिन् रञ्जकोऽग्निरिति संज्ञा स रसस्य राग-कृदुक्ताः|**[34] यह रस से रक्त बनाता है। रस को रंगने (लाल) के कारण इसे रञ्जक पित्त संज्ञा से भी अभिहित करते है। यह दो प्रकार की होती है 1.पीत रंजक 2.श्याव रंजक। मनुष्यों के शरीर में श्याव रंजक के अपेक्षा पीत-रंजक अधिक होता है किन्तु यह लोहित, क्षुद्रान्तस्थ, वसांरजक, त्वक रंजक, नेत्र रंजक एवं केश रंजक आदि के रूप में भी प्राप्त होते है।

साधक पित्त-

सुश्रुत संहिता में इस विषय में कहते है- यह मन की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है इसका स्थान हृदय माना जाता है **“यत् पित्तं हृदयस्थं तस्मिन् साधकोऽग्निरिति संज्ञा सोऽभिप्रार्थित-मनोरथसाधनकृदुक्तः।[35]”** ओज का स्थान हृदय में होने कारण इसे ओज कृत भी मानते है।

---

[33]तच्चादृष्टहेतुकेन विशेषेण पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति विवेचयति च दोषरसमूत्रपुरीषाणि तत्रस्थमेव चात्मशक्त्या शेषाणां पित्त-स्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति तस्मिन् पित्ते पाचकोऽग्निरिति संज्ञा... वहीं.21.1

[34] वहीं.21.1

[35] वही.2.1

आलोचक पित्त-

यह रूप ग्रहण का कार्य करता है इसका स्थान दृष्टि है- यदृष्ट्यां पित्तं तस्मिन्नालोचकोऽन्निगरिति संज्ञा स रू-पग्रहणाधिकृताः[36]। तेजस दृष्टि का अन्य नाम है अतः इसे तेजःकृत संज्ञा से भी अभिहित करते है।

भ्राजक पित्त-

इसके विषय में कहते है जो पित्त त्वचा में रहता है उसे भ्राजक संज्ञा से अभिहित करते है। यह भ्राजक पित्त मालिस, स्नान, लेप आदि उपायों द्वारा व्यवहार की जानेवाली औषध द्रव्यों का पाचन करता है- **"यत्तु त्वचि पित्तं तस्मिन् भ्राजकोऽग्निरिति संज्ञा सोऽभ्यङ्ग-परिषेकावगाहालेपनादीनां क्रियाद्र व्याणां पक्ता छायानां च प्रकाशकः॥[37]"**

दोषानुसार रोगों का वर्गीकरण-

संसार में असंख्य रोग है जिससे लगभग प्रत्येक मनुष्य पीड़ित है। सभी रोगों का पृथक्-२ नामकरण एवं प्रकृति भिन्न-२ होने से उसका निदान एवं उपचार असंभव है। अतः आयुर्वेद के आचार्यों ने संसार के समस्त रोगों का वर्गीकरण त्रिदोषों के अनुसार किया है ताकी रोगों का उपचार एवं निदान सरलता से हो सकें इसका मुख्य कारण है रोगों का असंख्य होना तथा सभी का यथार्थ नामकरण या यथार्थ ज्ञान का न होना। इसी तथ्य को आचार्य चरक ने सुष्टु परिभाषित किया है **"सर्वएव निजाविकारनान्यत्र वातपित्तकफ़ेभ्योनिवर्तन्ते, यथाहि...वातपित्तश्लेष्मणां पुनः स्थानसंस्थान प्रकृति विशेषानभिसमीक्ष्य तदात्मकानपि चसर्वविकारांस्तानेवोपदिशन्ति बुद्धिमन्तः॥[38]**

अर्थात् जैसे पक्षी पूरे दिन उड़ते हुए भी अपनी छाया को पीछे नही छोड़ता है उसी प्रकार अपने शरीरगत धातु वैषम्य के कारण होने वाले समस्त विकार वात पित्त कफ़ से अलग नहीं हो

---

[36] वहीं.21.1

[37] वही.

[38] च.सं.सू.19.5

सकते। वात पित्त कफ़ के स्थान, स्वरूप एवं कारण के भेदों को पूर्णतः देख समझ कर त्रिदोष के आधार पर आचार्यगण उसका उपदेश करते हैं। कोई भी शरीरगत रोग त्रिदोष संबन्धित होता है। त्रिदोष से भिन्न नहीं। असंख्य रोग होते हुए भी प्रमुख शरीरगत रोग जैसे उदररोग, श्वासरोग, कुष्टरोग आदि रोग यद्यपि दोषानुसार वर्णित न होकर अपने-२ स्थान विशेष लक्षण विशेष के आधार पर अभिहित किये गये है तथापि एसे रोगों में दोषों का अनुबंध होता ही हैं एवं दोषों के अनुसार ही उपचार होता ही हैं। आगन्तुक अर्थात् बाह्य कारणों से यथा अभिघात (प्रहार, चोट लगना आदि) अभिचार (व्यक्ति क् लक्ष्य कर मारण एवं उच्चाटन आदि), अभिषंग (काम, क्रोध आदि भावों का प्रभाव) आदि आगन्तुक निमित्त जन्य होते है प्रश्न उत्पन्न होता है निज रोगों का उपचार एवं निदान त्रिदोष के आधार पर होता है किन्तु आगन्तुक निमित्त जन्य रोगों का उपशमन कैसे हो सकता है? इसके प्रत्युत्तर में आचार्य चरक जी कहते हैं

आगन्तुरन्वेति निजं विकारं, निजस्तथागन्तुमपि प्रबृद्धः।

तत्रानुबन्धं प्रकृतिं च सम्यग्, ज्ञात्वा ततः कर्म समारभेत॥

अर्थात् पहले उत्पन्न निज रोगों का आगन्तुक रोग अनुगमन करते है तथा आगन्तुक रोगों का (अभिचार, अभिषंग, अभिषाप एवं अभिघातादि) का निजरोग अर्थात् वात, पित्त, कफ़ दोष अनुगमन करते है। ऐसी स्थिति में पूर्वोत्पन्न प्रधान कारण कौन है तथा पश्चात् उत्पन्न अनुबन्ध (अप्रधान कारण) कौन है इसे भलिभांति जानकर चिकित्सक को उपचार करना चहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आगन्तुक कारण कोई भी क्यों न हो शरीर से उसका संबन्ध होने पर उनमें भी त्रिदोष का संबन्ध हो जाता है तथा तदनुसार उनमें चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है । इसी सभी रोगों में त्रिदोष की व्यापकता को आचार्य सुश्रुत ने उदाहरण प्रस्तुत किया है **सर्वेषां च व्याधिनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लिंगत्वाददृष्टफलत्वादागमाच्च।...।**[39]

रोगोंपशमन में त्रिदोष की प्रांसगिकता-

असंख्य रोग होने से विविधता परक रोगोंपचार विकल्प भी अपरिसंख्येय हो सकता है। ऐसी स्थिति में चिकित्सा कार्य भी दुष्कर है अतः महाभिषगों ने त्रिदोष रूपी ऐसी मणिमय आलोकपुञ्ज दिया जिसके प्रकाश में अत्यन्त सरल एवं सुसाध्य होता है। रोगों की दोषानुसार विवरण प्राप्त होने पर तत्तद् दोष विशेष के उपशमनार्थ तत्तद् रस वाले द्रव्यों का उपयोग

[39] सु.सं.सू.24.8

आयुर्वेद में सुष्टु उपदिष्ट किया है षड्रसों (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त व कषाय) में तीन-तीन रस एक एक को उत्पन्न करते है, तीन तीन रस २ दोषों का शमन करते है कटु, तिक्त व कषाय रस वात दोष को उत्पन्न करते है अर्थात् प्रकुपित करते है तथा मधुर, अम्ल व लवण इसका शमन करते है। कटु, अम्ल व लवण रस पित्त दोष को प्रकोप करते है तथा मधुर, तिक्त व कषाय रस इसका शमन करते है। इसी प्रकार मधुर, अम्ल व लवण रस कफ़ का प्रकोप करते है तथा कटु, तिक्त व कषाय रस इसका शमन करते है इसी विषय आचार्य चरक स्पष्ट करते है **"तत्र दोषमेकैकं त्रयस्त्रयो रसाञ्जयन्ति, त्रयस्त्रयश्चोपशमयन्ति। तद्यथा- कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति, मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति; कटूम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति, मधुरतिक्तकषायस्त्वेनच्छमयन्ति। मधुराम्लवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति।"**[40]

सारणि के अनुसार समझने का प्रयास करते है-

दोषों का षड्रसों पर पञ्चमाहाभूतों के अधार पर प्रभाव

क्र.सं.	रस	रस एवं महभूत	रसगुण	दोष	दोष एवं महाभूत	दोषगुण	प्रकोप	शमन
1	मधुर	पृथ्वी+ जल	गुरु, स्निग्ध, शीत, पिच्छिल	कफ	पृथ्वी + जल	गुरु,शीत, मृदु,स्निग्ध मधुर,स्थिर एवं पिच्छिल	कफ़	-
	मधुर	पृथ्वी+ जल	गुरु, स्निग्ध, शीत, पिच्छिल	वात	आकाश + वायु	शीत, रूक्ष, खर,विशद, सूक्ष्म,चल एवं लघु	-	वातशमन
	मधुर	पृथ्वी+ जल	गुरु, स्निग्ध,	पित्त	अग्नि	स्नेह,उष्ण, तीक्ष्ण,द्रव,	-	पित्तशमन

[40] च.सं.वि. 1.6

			शीत, पिच्छिल			अम्ल,सर, कटु।		
2.	अम्ल	पृथ्वी- अग्नि	लघु, उष्ण, स्निग्ध	पित्त	अग्नि	स्नेह,उष्ण, तीक्ष्ण,द्रव, अम्ल,सर, कटु।	पित्तप्रकोप कफ़प्रकोप	वातशमन
3.	लवण	जल- अग्नि	गुरु, स्निग्ध, उष्ण	पित्त	अग्नि	स्नेह,उष्ण, तीक्ष्ण,द्रव, अम्ल,सर, कटु।	पित्तप्रकोप	वातशमन
4.	कटु	वायु -अग्नि	लघु, उष्ण, रूक्ष	वात	आकाश +वायु	शीत, रूक्ष खर,विशद सूक्ष्म, चल एवं लघु	पित्तप्रकोप वातप्रकोप	कफ़ शमन
5.	तिक्त	वायु+आकाश	रुक्ष, शीत, लघु	वात	आकाश + वायु	शीत, रूक्ष खर,विशद सूक्ष्म, चल एवं लघु	वातप्रकोप	कफ़ शमन
6.	कषाय	पृथ्वी+वायु	रुक्ष, शीत, लघु	वात	आकाश+ वायु	शीत, रूक्ष खर,विशद सूक्ष्म, चल एवं लघु	वातप्रकोप	पित्तशमन कफ़ शमन

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आयुर्वेद में आयु के रुप में शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व एवं आत्म के संयोग को कहा है। इनमें निहित तत्तद्गत व्याधियों से परिरक्षण ही

आयुर्वेद का प्रयोजन भी है। संपूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना भी त्रिदोष, त्रयोदश अग्नियाँ, सप्त धातु, त्रिविध-मल, आत्मा, इन्द्रिय तथा मन की समावस्था से ही कर सकते हैं उसमें प्रथमतः शरीर अधारभूत तत्त्व त्रिस्थूण के रुप में त्रिदोष (वात, पित्त एवं कफ़) होने से यह त्रिदोष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि यह रोगों का जनक भी का और रोगों का उपशमन कारक भी हैं, यह रोगों के जनक के कारण दोष के रूप में परिगणना होती है तथा रोगों के उपशमन के कारक होने के कारण धातु भी हैं। ये त्रिदोष सभी व्याधियों का मूल कारक हैं अतः इनके सम्यवस्था का अत्यन्त आवश्यक है उसके लिये हमे यथा काल तथा ऋतुओं के अनुसार बल वृद्धि तथा क्षीण का विचार करके तत्तद् षड्रसों का सेवन करके हम दोषों को हम् सम रख सकते हैं जिससे असंख्य व्याधियों दोषानुसार होने वाले रोगों से बच सकें।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

अष्टाङ्गहृदयम् (निर्मला हिन्दी व्याख्यासहित), ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2015

चरकसंहिता (दो भाग), शुक्ल, विद्याधर *एवं* रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2015.

सुश्रुतसंहिता (सुश्रुतविमर्शनी हिन्दीव्याख्या) (तीन भाग), अनन्तराम शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2017

उपाध्याय, गोविन्द प्रसाद, *रोग-रोगी परीक्षा पद्धति*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008.

मिश्र, तारा शंकर (व्या.), *स्वास्थ्यवृत्तसमुच्चय*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1985.

सिंह, रामहर्ष, स्वस्थवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2015.